315hi21

21

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन

हमारे स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास कोई एक समरूप कहानी नहीं है। इसमें बहुत से भिन्न–भिन्न प्रकार के धागे हैं जो आपस में गुंथे हुए हैं और परस्पर एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं और स्वतंत्रता के लिए हमारे लोगों के संघर्ष की परतों को खोलते हैं। नरमदल के प्रयासों से कानूनी और संवैधानिक परिवर्तन हुए। क्रांतिकारियों के उत्साह के परिणामस्वरूप बहादुरी और अटल संघर्ष की घटनाएं घटीं। महात्मा गांधी द्वारा शुरु किए गए जन–आंदोलन पर जनता के प्रत्येक वर्ग की ओर से व्यापक प्रतिक्रिया हुई। प्रत्येक आंदोलन ने एक–दूसरे को समर्थन दिया और उन्हें पुष्ट किया, जिसके परिणामस्वरूप अंततः हमें स्वतंत्रता मिली। इस पाठ में हम इन विभिन्न आंदोलनों के संबंध में पढ़ेंगे और यह देखेंगे कि कैसे इन्होंने एक–दूसरे पर असर डाला और सबके सामान्य लक्ष्य अर्थात् स्वतंत्रता पाने की ओर अग्रसर किया।

उद्देश्य

इस पाठ का अध्ययन करने के पश्चात आपः

- भारत के स्वतंत्रता आंदोलन के संबंध में एक समग्र दृष्टिकोण विकसित कर सकेंगे;
- आंदोलन के विविध तानों–बानों की पहचान कर उन्हें क्रमवार स्थिति में व्यवस्थित कर सकेंगे और
- यह देख सकेंगे कि राष्ट्रीय आंदोलन के प्रत्येक वर्ग ने कैसे दूसरे को प्रभावित किया।

21.1 भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और प्रारंभिक राष्ट्रवादी

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का गठन 1885 में राजनीतिक दृष्टि से जागरूक शिक्षित 72 भारतीयों के एक समूह द्वारा किया गया था। ब्रिटिश इंडियन सिविल सर्विस के सेवानिवृत्त अधिकारी, मिस्टर ए. ओ. ह्यूम ने इसके गठन में बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके सदस्यों में शामिल थे फिरोजशाह मेहता, बदरूद्दीन तैय्यबजी, डब्ल्यू.सी. बनर्जी, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, आनंदमोहन बोस और रोमेश चन्द्र दत्त। यह संगठन किसी भी प्रकार से भारतीय लोगों की ऐसी पहली संस्था नहीं थी। भारत में अंग्रेजी पढ़ा–लिखा वर्ग

धीरे–धीरे राजनीतिक दृष्टि से जागरूक हो रहा था और 1875 से 1885 के दौरान अनेक राजनीतिक संस्थाएं गठित की जा रही थीं। कलकत्ता के द्वारकानाथ गांगुली, पुणे के रानाडे और जी.वी. जोशी, बम्बई के के.टी. तेलंग और मद्रास के जी. सुब्रमन्यम अय्यर व वीरराघवचारी पहले ही क्षेत्रीय राजनीतिक संगठनों से जुड़े हुए थे। इनके संगठनों के नाम क्रमश : इंडियन एसोसिएशन, पूना सार्वजनिक सभा, बांबे प्रेजिडेंसी एसोसिएशन, और मद्रास महाजन सभा थे। इन संस्थाओं की कार्य सूची संपूर्ण स्वतंत्रता के आदर्श से दूर, बहुत सीमित थी। ये संस्थाए औपनिवेशिक शासन की उन नीतियों के विरुद्ध आवाज उठा रही थीं, जो भारतीयों के हित में नहीं थीं। इन संस्थाओं से संबद्ध प्रारंभिक राष्ट्रवादियों के बुनियादी सरोकार निम्नलिखित थे :

1. कपास के आयात–कर को भारतीयों के अनुकूल बनाया जाए।
2. सरकारी सेवाओं का भारतीयकरण किया जाए।
3. ब्रिटिश सरकार की अफगान नीति का विरोध।
4. वर्ना कुलर प्रेस एक्ट और प्रेस पर नियंत्रण का विरोध।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की जो बात इसे अन्य संस्थाओं से पृथक करती थी–यह थी कभी भारत के लोगों के लिए एक ऐसा सामान्य राजनीतिक मंच उपलब्ध कराने का प्रयास, जिसने इसे यह दावा करने के योग्य बनाया कि यह देश का प्रतिनिधित्व करती है। यद्यपि ब्रिटिश प्रशासन ने कांग्रेस के महत्त्व को कम करने का प्रयास किया, परन्तु इसके बावजूद यह लोगों की महत्त्वाकांक्षा को दर्शाने में सफल रही। अतः इस संगठन का सबसे महत्त्वपूर्ण और सर्वोपरि लक्ष्य था लोगों के मन में यह जागरूकता पैदा करना कि वे सभी एक राष्ट्र से संबंध रखते हैं। यहां की सांस्कृतिक, भाषाई और धार्मिक परंपराओं की विविधता के चलते यह कार्य अत्यन्त भयावह था। सभी विभिन्न ताकतों को एक सामान्य प्रतिपक्षी–ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरोध में संगठित करना था।

प्रारंभ में कांग्रेस के संस्थापकों को सरकार को उन मामलों में प्रभावित करने की आशा की थी जो देश के कल्याण और विशेष रूप से आर्थिक विकास को प्रभावित करते थे। उन्हें उम्मीद थी कि यदि समुचित प्रचार के जरिए राष्ट्र की समस्याओं को प्रकाश में लाया जाये तो औपनिवेशिक सरकार इन समस्याओं के समाधान के लिए कदम उठा सकती है।

अतः प्रारंभिक वर्षों के दौरान राष्ट्रवादियों ने वक्तव्यों और समाचार–पत्रों में लेखों द्वारा राष्ट्र की मुख्य समस्याओं और उन्हें सुधारने के उपायों को सामने लाने का प्रयास किया। तथाकथित नरमपंथियों या कांग्रेस के प्रारंभिक सदस्यों का सबसे मूल्यवान योगदान था, आर्थिक समीक्षा का सूत्रपात करना। सर्वप्रथम दादा भाई नौरोजी और तत्पश्चात् अन्य राष्ट्रवादियों ने यह देखा कि औद्योगिक क्रांति लाने के बजाय, जिसकी भारत का बौद्धिक वर्ग आशा कर रहा था, ब्रिटिश शासन भारत को और निर्धन बना रहा था और भारत के स्वदेशी हस्तशिल्प–उत्पादन को नष्ट कर रहा था। इस खोज ने प्रारंभिक राष्ट्रवादियों के मन में कुछ भ्रम पैदा कर दिया था क्योंकि उन्हें यह आशा थी कि ब्रिटिश शासन के परिणामस्वरूप भारत में आधुनिकता आयेगी। प्रारंभिक कांग्रेस के अन्य सरोकार इस प्रकार थे :

(1) भारतीय प्रतिनिधियों को अधिकाधिक शक्तियां दिये जाने सहित सर्वोच्च और स्थानीय विधान परिषदों में सुधार।

आपकी टिप्पणियाँ

(2) इंग्लैंड और भारत में समानान्तर परीक्षाओं के जरिए सिविल सर्विसेज का भारतीयकरण करना।

(3) वन संबंधी कानूनों को बदलना, जो भारतीयों को प्रभावित करते थे।

(4) असम के चाय के बागान में अनुबंधित मजदूरी के विरोध में संगठित अभियान चलाना।

21.2 स्वदेशी और बहिष्कार : गरमपंथी राजनीति

1885–1905 के बीच के चरण को गरमपंथियों का काल कहा जाता है। 1905 में तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड कर्जन ने बंगाल के विभाजन की घोषणा की। उस समय के बंगाल में वर्तमान पश्चिम बंगाल, बिहार और झारखंड, ओड़िसा और असम शामिल थे। इसमें वर्तमान बांग्लादेश भी शामिल था। निस्संदेह यह एक बहुत ही विस्तृत प्रशासकीय इकाई थी। किंतु इसके विभाजन के तरीके अंग्रेजों की फूट डालने की नीतियां साफ जाहिर कर दीं। एक तो यह विभाजन धर्म के आधार पर था, जिन क्षेत्रों में हिन्दुओं की आबादी अधिक थी, उन्हें मुस्लिम–बहुल आबादी वाले क्षेत्रों से अलग किया गया। इसके अतिरिक्त पुनरुज्जीवित बौद्धिक (अंग्रेजी शिक्षित उच्च वर्ग भारतीय) वर्ग के शहरी आधार वाले स्थलों को मुख्यतया खेतीबाड़ी वाले क्षेत्रों (मुख्य रूप से पटसन (जूट) पैदा करने वाले क्षेत्र) से अलग किया गया, जिसके पीछे उद्देश्य था कलकत्ता के महत्त्व को कम करने का प्रयास क्योंकि यहीं पर पूरे बंगाल के बौद्धिक वर्ग के लोग आपस में मिलते थे और एक–दूसरे को प्रेरित करते थे। इस घोषणा के बाद व्यापक विरोध–प्रदर्शन हुए। शुरू में यह विरोध नरमपंथियों के 'अनुनय–विनय' की युक्तियों के रूप में किया गया, जिसमें औपनिवेशिक सरकार के नाम याचिकाएं और ज्ञापन भेजे गए, भाषण, दिन भर सार्वजनिक सभाएं आयोजित की गई और प्रेस–आंदोलन चलाए गए। यह भारत और इंग्लैंड में जनमत को प्रभावित करने का प्रयास था। इन प्रयासों के बावजूद जुलाई 1905 में बंगाल का विभाजन घोषित कर दिया गया।

अंतिम घोषणा होते ही बंगाल में विरोध की आग फूट पड़ी। पूरे बंगाल में विरोध सभाएं आयोजित की गईं और खास तौर पर न सिर्फ कलकत्ता में बल्कि बंगाल के अंदरूनी छोटे कस्बों, जैसे दिनाजपुर, पाबना, फरीदपुर, ढाका, बड़िसाल इत्यादि में भी सभाएं हुई। ऐसी ही एक सभा में पहली बार ब्रिटिश सामान के 'बहिष्कार' का निर्णय लिया गया। 7 अगस्त 1905 को कलकत्ता के टाउनहॉल में एक बैठक में 'बहिष्कार' का 'संकल्प' पारित करके स्वदेशी आंदोलन की औपचारिक घोषणा की गई, जिसमें अब तक बिखरे नेतृत्व को एकजुट बना दिया। जिस दिन विभाजन लागू किया गया, यानी 11 अक्टूबर 1905 को उस दिन कलकत्ता में हड़ताल की गई और उसे शोक–दिवस घोषित किया गया। सभी लोगों ने उपवास किया और किसी भी घर में खाना पकाने के लिए चूल्हे नहीं जलाए गए। बंदे मातरम का गीत गाते हुए गलियों में परेड निकाली गई। बंगाल के लोगों ने एकता के प्रतीक के रूप में एक–दूसरे की कलाइयों पर राखियां बांधी।

इस विशेष प्रकार के 'स्वदेशी' और 'बहिष्कार' के जन–विरोध ने कांग्रेस के उन नए सदस्यों में भी लोकप्रियता हासिल कर ली, जो अपने प्रयासों के अनुकूल परिणाम देखने में नरमपंथियों से ज्यादा असहनशील थे। लोकमान्य तिलक स्वदेशी और विदेशी सामान के बहिष्कार के संदेश को मुम्बई और पुणे लेकर गए, अजीत सिंह और लाला लाजपतराय

पंजाब में और उत्तर भारत के अन्य भागों में लेकर गए। सैय्यद हैदर रजा दिल्ली तक और चिदम्बरम पिल्लई मद्रास प्रेजिडेंसी तक इस संदेश को लेकर गए, जो कि बिपिन चन्द्र पाल के विस्तृत भ्रमणों के दौरान दिए गए व्यापक वक्तव्यों से भी प्रेरणा ले रहे थे। कांग्रेस ने स्वदेशी के आह्वान को गोपालकृष्ण गोखले की अध्यक्षता में 1905 हुए अधिवेशन के दौरान औपचारिक रूप से अपनाया। यद्यपि कांग्रेस ने बंगाल में स्वदेशी आंदोलन को समर्थन दिया, परन्तु इसने इस आंदोलन को और आगे संपूर्ण भारत के स्तर पर अथवा संपूर्ण स्वतंत्रता के लक्ष्य तक विस्तारित नहीं किया। तिलक, बिपिन चन्द्र पाल, लाला लाजपत राय और अरबिंद घोष इत्यादि जैसे चरमपंथी नेताओं की इच्छा केवल यही थी। चरमपंथियों के इस दबाव ने दादा भाई नारौजी को कलकत्ता अधिवेशन के दौरान अपने अध्यक्षीय संबोधन में यह कहने के लिए प्रेरित किया कि कांग्रेस का अंतिम लक्ष्य है, 'स्व–शासन या स्वराज'।

स्वदेशी आंदोलन का योगदान यह था कि उसने नए किस्म के प्रतिरोधों की शुरूआत की। विरोध के इन तरीकों में से कुछ ने महात्मा गांधी द्वारा सत्याग्रह के दौरान अपनाए गए अनेक तरीकों की पृष्ठ भूमि तैयार की। विरोध करने के यह नए तरीके थे जनसभाएं, जुलूस, विदेशी सामान का बहिष्कार (बाद में जिसका विस्तार सरकार स्कूलों, कॉलेजों, न्यायालयों, उपाधियों और सरकारी सेवाओं का बहिष्कार तक हो गया), हड़तालें, सार्वजनिक रूप से विदेशी सामान को जलाना और विदेशी सामान बेचने वाली दुकानों के सामने धरने इत्यादि। व्यापक स्तर पर जनमानस में सक्रियता पैदा करने के प्रयास किए गए और ऐसी 'समितियों' का गठन किया गया, जिन्होंने बंगाल के अंदरुनी हिस्सों में जाकर स्वदेशी का संदेश फैलाया।

पहली बार जन सामान्य तक पहुँचने के लिए राष्ट्रीय आंदोलन में पारंपरिक और लोकप्रिय त्योहारों का इस्तेमाल किया गया।

महाराष्ट्र में तिलक द्वारा बड़ी संख्या में लोगों को इस आंदोलन की ओर आकर्षित करने और इस संबंध में उन्हें शिक्षित करने के लिए गणपति और शिवाजी उत्सवों का उपयोग किया गया। बंगाल में लोगों को प्रेरित करने के लिए स्वदेशी गीतों का प्रयोग किया गया। लोकप्रिय रंगमंच 'यात्रा' की एक किस्म को राष्ट्रीय भावनाओं के विस्तार के लिए प्रयोग में लाया गया। इस आंदोलन के साथ–साथ सांस्कृतिक गतिविधियों की एक बाढ़–सी आ गई थी।

अंत में औपनिवेशिक सरकार उस रूप में विभाजन को वापस लेने के लिए मजबूर हो गई, जिस रूप में उसने इसकी परिकल्पना की थी। फिर भी उन्होंने 1911 में राजधानी को कलकत्ता से दिल्ली स्थानांतरित करके कलकत्ता और उसके साथ–साथ बंगाल के बुद्धिजीवियों के महत्त्व को कम करने का प्रयास तो किया ही।

पाठगत प्रश्न 21.1

1. भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का गठन कब हुआ? किस ब्रिटिश अधिकारी ने इसके गठन में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई?

____

आपकी टिप्पणियाँ

2. बंगाल–विभाजन की घोषणा किसने और कब की ?

____

3. राष्ट्रवादी भावनाओं के प्रसार के लिए किस लोकप्रिय किस्म के रंगमंच का प्रयोग किया गया?

____

4. 1911 में राजधानी को स्थानांतरित करने का मुख्य कारण क्या था?

____

21.3 भारत और विदेश में क्रांतिकारी आंदोलन का पहला चरण

कांग्रेस के भीतर ही नरमपंथियों और गरमपंथियों के बीच मतभेदों की खाई चौड़ी होती चली गई। गरमपंथी लोग औपनिवेशिक सरकार द्वारा शुरू किए गए संवैधानिक सुधारों के नाम पर कराए जाने वाले असेंबली चुनावों का बहिष्कार करने के पक्ष में थे। नरमपंथी लोग इस चुनाव प्रतिक्रिया में भाग लेना चाहते थे, हालांकि सीमित स्तर पर। अंत में इस मतभेद का परिणाम यह हुआ कि 1907 में कांग्रेस के सूरत अधिवेशन के दौरान कांग्रेस का विभाजन हो गया। गरमपंथी नेताओं ने जनसामान्य को क्रियाशील करना जारी रखा, जबकि कांग्रेस ने सरकारी नीतियों को प्रभावित करने का प्रयास किया। 1909 के मॉर्ले–मिंटो सुधार रमपंथियों की आकांक्षाओं पर एक करारा आघात था। स्वदेशी आंदोलन अपनी गति खो चुका था। फिर भी आंदोलन के क्रांतिकारी संदेश ने एक अन्य वैयक्तिक किस्म के विरोध यानी क्रांतिकारी आंदोलन को प्रेरित किया।

क्रांतिकारियों का लक्ष्य था चरम आत्म–बलिदान द्वारा ब्रिटिश शासन का अंत। उनका तरीका था उन अलोकप्रिय औपनिवेशिक अधिकारियों की हत्या करना, जो सरकार के दमनकारी कार्यों को आकार देने के लिए जिम्मेदार थे। इन जन–आंदोलनों के प्रति औपनिवेशिक प्रतिक्रिया हमेशा दोहरी रहती थी। एक ओर तो उन्होंने संवैधानिक सुधार करके और उन्हें सीमित चुनावों में भाग लेने के लिए आमंत्रित करके नेताओं को कुछ रियायतें दीं, दूसरी ओर प्रमुख नेताओं को गिरफ्तार करके बड़े पैमाने पर उनका दमन किया। गरमपंथी नेताओं ने अनेक वर्ष जेलों में बिताऐ। उन नेताओं के कभी जेल के अंदर तो कभी बाहर रहने के परिणामस्वरूप क्रांतिकारी आंदोलन मुख्यतः भूमिगत रहकर, गुप्त संगठनों द्वारा चलाये जाने लगे। इन संगठनों की उपत्ति के बीज स्वदेशी के दिनों में गठित 'समितियों' में समाहित थे।

सन् 1908 में खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी ने एक वाहन पर बम फेंका, जिसके संबंध में वे समझते थे कि उसमें मुजफ्फरपुर का एक अलोकप्रिय जज किंग्सफोर्ड बैठा है। लेकिन उन्होंने उसके स्थान पर दो महिलाओं की हत्या कर दी। चाकी ने खुद को गोली मार ली थी और खुदीराम को फांसी दे दी गई थी। क्रांतिकारियों ने, जो मुख्यतया अनुशीलन और युगांतर समितियों से संबंधित थे, अपने आंदोलनों के लिए धन इकट्ठा करने के लिए स्वदेशी डकैतियाँ भी डाली। क्रांतिकारी आंदोलन सिर्फ बंगाल तक ही सीमित नहीं था। रासबिहारी बोस और शचीन्द्रनाथ सान्याल ने पंजाब से लेकर उत्तर–प्रदेश और दिल्ली तक के क्षेत्रों में क्रांतिकारी तंत्र की स्थापना की। 1912 में इन

दोनों क्रांतिकारियों ने वाइसराय लॉर्ड हार्डिंग पर दिल्ली में घातक प्रहार किया। क्रांतिकारी आंदोलन धीरे–धीरे भारतीय तटों से बाहर भी फैल रहा था। श्यामजी कृष्णवर्मा ने सन् 1905 में लंदन में भारतीय विद्यार्थियों के लिए इंडिया हाउस नाम का एक केन्द्र शुरू किया। सन् 1907 में इस संगठन की कमान बी.डी. सावरकर के अधीन एक क्रांतिकारी समूह के हाथों में आ गई थी। इस संगठन के मदनलाल ढींगरा ने सन् 1909 में भारतीय कार्यालय के अफसरशाह कर्जन–विली की लंदन में हत्या कर दी थी। यूरोप में (पेरिस और जेनेवा) एक पारसी क्रांतिकारी मादाम कामा ने फ्रांसीसी समाजवादियों के साथ संपर्क स्थापित किया और 'बंदे मातरम' नामक एक क्रांतिकारी पत्रिका की शुरूआत की। बर्लिन में वीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय और अन्य नेता 1909 से सक्रिय थे। ब्रिटेन और यूरोप में क्रांतिकारी समूह बिलकुल अलग–थलग थे। फिर भी संयुक्त राज्य अमेरिका में और विशेष रूप से ब्रिटिश कोलम्बिया और प्रशांत महासागर के तटवर्ती राज्यों में इस आंदोलन को कुछ हद तक जनाधार मिला। इन राज्यों में 15000 भारतीयों की आबादी थी, जो मुख्य रूप से सिख समुदाय के लोग थे जो वहां सफल व्यापारी और कारीगर होने के बावजूद अत्यधिक नस्ली भेदभाव का सामना कर रहे थे। सन् 1913 में सैन–फ्रांसिस्को शहर में इस आबादी में गदर आंदोलन शुरू हुआ। यह आंदोलन सोहन सिंह भाकना द्वारा शुरू किया गया था और हरदयाल इसके अत्यंत प्रमुख नेताओं में से एक थे।

1914 में प्रथम विश्व युद्ध शुरू हुआ और क्रांतिकारियों ने इस अवसर को अपने पूर्ण स्वतंत्रता के लक्ष्य को आगे बढ़ाने के लिए एक बहुत ही समुचित अवसर समझा। ब्रिटेन युद्ध की तैयारियों में व्यस्त था और इस प्रयोजन के लिए भारत से सैनिक दलों को बाहर भेजा जा रहा था। जर्मनी जैसे शत्रु राष्ट्र ब्रितानियों को कमजोर करने के लिए क्रांतिकारियों की गतिविधियों के लिए धन की व्यवस्था करने के लिए अत्यंत उत्सुक थे। तुर्की पर ब्रिटेन के आक्रमण से संपूर्ण इस्लामिक जगत का तुर्की को समर्थन मिला, क्योंकि तुर्की उस 'खलीफा' का स्थान था जिसका पूरे विश्व में सम्मान किया जाता था। बरकतुल्ला मुख्य मुस्लिम क्रांतिकारी नेताओं में से एक महत्त्वपूर्ण नेता थे जो गदर आंदोलन में शामिल हुए। उत्तर प्रदेश में देवबंद में एक मुस्लिम शिक्षण केन्द्र में शिक्षित व्यक्तियों के एक समूह या 'उलेमा' ने भी क्रांतिकारी संदेश का प्रचार किया जिसका बड़ी संख्या में मुसलमानों ने समर्थन किया।

इस दौरान स्वदेशी डकैतियाँ और ब्रिटिशों की हत्याए जारी रहीं, और इस अवधि में क्रांतिकारी गतिविधियों में उल्लेखनीय वृद्धि देखने में आई। जतिन मुखर्जी (बाघा जतिन) के नेतृत्व में बंगाली क्रांतिकारियों का समूह संगठित हुआ और उन्होंने बहुत बड़े पैमाने पर रेल–सेवा को तहस–नहस करने और हथियार छीनने की योजना बनाई। उन्हें तब सफलता मिली, जब बहुत बड़े पैमाने पर कलकत्ते में रोडा फर्म के शस्त्र और बारूद इन लोगों के हाँथ लगे। तथापि उड़ीसा में बालासोर की पुलिस द्वारा बाघा जतिन को पकड़ लिए जाने इनकी दीर्घकालीन योजनाओं को बड़ा झटका लगा। रास बिहारी बोस और सचिन सान्याल की योजना भी बंगाल के क्रांतिकारी आंदोलन का अंग थी। इस समूह वाले लोग बड़ी संख्या में भारत में वापस आने शुरू हो गए थे। कामागाटा मारू की घटना ने इस आवेग को और भड़का दिया था। सिखों और मुस्लिम यात्रियों को कनाडा ले जा रहे कामागाटा मारू जहाज को कनाडा सरकार ने परे धकेल दिया और यह सितम्बर 1914 में कलकत्ता पहुंचा। यात्रियों ने पुलिस से मुठभेड़ की जिसमें 22 लोग मारे गए थे।

गदर आंदोलन और क्रांतिकारी योजनाएं असफल रहीं, क्योंकि ब्रिटिश सरकार ने इन पर बहुत सख्ती शुरू कर दी थी। जो भी गदरी वापस आए थे, उन्हें तत्काल गिरफ्तार कर लिया गया था और रास बिहारी बोस जापान चले गए थे। सचिन सान्याल को जीवन–भर के लिए देशनिकाला दिया गया था। क्रांतिकारी और विशेष से गदरी सैनिक इकाइयों और किसानों के मध्य क्रांति को संगठित रूप देने में अग्रणी थे।

21.4 होमरूल आंदोलन

बालगंगाधर तिलक, जो 1908–1914 के दौरान जेल की सजा काट रहे थे, कांग्रेस में वापस आ गए थे जहाँ की रात मॉर्ले मिंटो सुधारों के तहत कौंसिल चुनावों में हाथ लगी निराशा के बाद उनके लिए और अधिक खुल गई थी। 1914–15 तक स्वदेशी आंदोलन, कौंसिल में प्रवेश और अंदर रहकर प्रशासन को प्रभावित करने के प्रयास और क्रांतिकारी आंदोलन सभी अपने–आप में अपना प्रभाव खो चुके थे। यह वह वक्त था, जब राष्ट्रीय आंदोलन को नए सिरे से जोरदार ढंग से आगे बढ़ाने की जरूरत थी और यह एनी बेसेंट और तिलक के होमरूल आंदोलन से ही संभव था। तिलक ने कांग्रेस के भीतर से ही होमरूल लीग के जरिए एक आक्रामक तंत्र स्थापित करने का काम किया, जिसे उन्होंने अप्रैल 1916 में स्थापित किया थी। लगभग इसी दौरान थियोसोफिस्ट लीडर एनी बेसेंट सुर्खियों में आई और उन्होंने भारतीयों के लिए स्व–शासन हेतु बहुत जोर–शोर से विरोध शुरू करने का प्रस्ताव रखा। बेसेंट ने आयरिश होम रूल के मॉडल के अनुरूप देश में एक होम रूल लीग आंदोलन स्थापित करने का प्रस्ताव रखा ताकि लोगों में जागरूकता का प्रसार किया-जा सके। बेसेंट की लीग की स्थापना सितम्बर 1916 में हुई थी।

तिलक की लीग महाराष्ट्र और कर्नाटक में सक्रिय थी। बेसेंट की लीग का प्रभाव अखिल भारतीय स्तर पर था, जिसका मुख्यालय अड्यार, मद्रास में था। होम रूल लीग की गतिविधियां थीं शहरों में चर्चाओं और वाचनालयों की व्यवस्था करना, परचे बाटना और जनमत को प्रभावित करने के लिए व्याख्यान देने के लिए दौरे इत्यादि संचालित करना। होम रूल आंदोलन ने कभी भी संपूर्ण स्वतंत्रता के लक्ष्य के संबंध में बात नहीं की, परन्तु फिर भी, उन्होंने सरकारी नीतियों के विरोध के जरिए, उदाहरणतया, मद्य कानून, वन कानून इत्यादि जैसी, उपनिवेशवादियों की दमनकारी नीति के विरुद्ध अपना ध्यान अवश्य केन्द्रित किया। इसी समय राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं की नई पीढ़ी तैयार की गई और इस आंदोलन के केन्द्र को बंगाल और पंजाब से महाराष्ट्र और दक्षिण में स्थानांतरित किया गया। अनेक नरमपंथी कांग्रेसी भी होम रूल आंदोलन से जुड़ गए, फिर भी, 1918 के बाद होम रूल आंदोलन का अचानक ही अंत हो गया।

पाठगत प्रश्न 21.2

1. सेन फ्रांसिस्को शहर में गदर आंदोलन की नींव किसने रखी?

2. कॉमा गाटामारू की घटना क्या है?

3. क्रांतिकारी पत्रिका की शुरूआत किसने की।

____

4. ऐनी बेसेंट और तिलक ने कौन सा आंदोलन शुरू किया?

____

21.5 गांधी जी का जन-आंदोलन : प्रारंभिक वर्ष

ब्रिटिश सरकार ने 1919 में संवैधानिक सुधारों की अगली कड़ी मॉन्टेग्यू–चैमस्फोर्ड सुधार की शुरूआत की। यद्यपि इन सुधारों के द्वारा यह दावा किया गया कि इनसे स्थानीय स्व–शासन आया है और भारतीयों को काफी हद तक स्वायत्ता मिली है, परन्तु वास्तविक शक्तियाँ अभी भी उन्होंने सख्ती से ब्रिटिश हाथों में ही रखीं। इन सुधारों के द्वारा शुरू की गई द्विशासन प्रणाली ने और अधिक भारतीयों को प्रतिनिधित्व का अवसर दिया और स्थानीय व्यय पर अधिकाधिक नियंत्रण दिलाया, परन्तु चुनी गई विधायिका का कार्यपालिका पर कोई नियंत्रण नहीं था।

युद्ध के बाद के वर्षों में (प्रथम विश्व युद्ध 1918 में समाप्त हुआ था) देश में बढ़ता असंतोष दिखाई देने लगा क्योंकि भारत की अर्थव्यवस्था पर युद्ध का प्रभाव बहुत ही स्पष्ट रूप से सामने आ गया था। युद्ध के परिणामस्वरूप कीमतें, अभाव और बेरोजगारी तो बढ़ी ही, इसके साथ ही इन्फ्लूएंजा महामारी भी फूट पड़ी। युद्धकालीन आवश्यकताओं से भारत में उद्यमियों के एक नये वर्ग का उद्भव हुआ और एक बड़ा कामगार वर्ग पैदा हुआ, जो अधिकाधिक संगठित होता जा रहा था। यह कामकाजी वर्ग अत्यन्त उद्विग्न था और राष्ट्रवादी आंदोलन के लिए एक संभावित बल था। पूंजीवादी वर्ग का एक हिस्सा औपनिवेशिक राज्य के प्रति निष्ठावान था क्योंकि वह श्रमिक वर्ग के नियंत्रण में सहायता करता था। फिर भी, उनमें से भी कुछ लोग राष्ट्रीय आंदोलन के समर्थक थे। वे बेशक सरकार की आर्थिक नीतियों का विरोध करते थे परंतु उन्होंने यह अनुभव किया था कि ब्रिटिश नीतियों का अंतिम परिणाम भारतीय उद्योगों के लिए हानिकारक होगा।

इस अशांत अवधि के दौरान मोहनदास करमचंद गांधी के आगमन ने राष्ट्रवादी आंदोलन का एक अन्य कालखंड चिह्नित हुआ। सन् 1915 में भारत आए गांधी ने युद्ध के बाद के वर्षों में मौजूद इन शक्तियों को नियंत्रित करने के लिए अपने ही तरीकों का प्रयोग किया। उनका तरीका था विशिष्ट मुद्दों और कानूनों का पता लगाना और शांतिपूर्ण ढंग से उनका विरोध करना तथा अनुशासित व्यक्तियों की मदद से उन कानूनों का उल्लंघन करना। गांधी जी के आंदोलन का महत्त्व यह था कि उन्होंने विशिष्ट मुद्दों पर ध्यान केन्द्रित कराया। गांधी जी ने सर्व प्रथम चम्पारण, खेड़ा और अहमदाबाद के तीन आंदोलनों में सफलता प्राप्त की। इनमें से पहले दो किसान–आंदोलन थे और अंतिम आंदोलन था अहमदाबाद में मिल–कामगारों की हड़ताल।

चम्पारण के किसान उन यूरोपीय उपनिवेशी काश्तकारों के खिलाफ आंदोलन कर रहे थे जो उन्हें नील की खेती करने के लिए मजबूर करते थे। चम्पारण में उपनिवेशी काश्तकारों के खिलाफ पहले से ही विरोध का इतिहास था। किसान नेताओं में से एक राज कुमार शुक्ला अपनी हालत दिखाने के लिए गांधी जी को आमंत्रित करने लखनऊ तक गए।

गांधी जी ने 1917 इस मामले में खुली जांच करवाना शुरू की। गांधी जी को चंपारण आने से रोकने का प्रयास करने और बाद में सत्याग्रह की धमकी देने पर उन्हें वहां जाने देने से चंपारण आंदोलन का व्यापक प्रचार हुआ। चम्पारण आंदोलन का परिणाम यह हुआ कि 'तिनकाठिया' प्रणाली को हटा दिया गया, जिसके अंतर्गत किसानों को अपनी अधिकृत जमीन के 3/20 वें हिस्से में नील की खेती करनी पड़ती थी।

जिस दूसरे आंदोलन के साथ गांधी जी ने खुद को जोड़ा, वह था अहमदाबाद के मिल कामगारों का आंदोलन। कामगारों और मालिकों के बीच झगड़े की वजह थी 'प्लेग बोनस' वापस लेना। महामारी समाप्त होने के बाद मिल–मालिकों ने बोनस वापस ले लिया था और कामगार युद्ध के बाद हुई मूल्य–वृद्धि की वजह से बोनस की वापसी का विरोध कर रहे थे। गांधी जी ने कामगार और मालिक दोनों पर दबाव डाला कि वे एक न्यायाधिकरण यानी ट्रिब्यूनल के समक्ष वार्ता करें।

मालिक कुछ कारीगरों द्वारा बुलाई गई हड़ताल का बहाना लेकर अचानक पंच–फैसले से हट गए और घोषणा की कि वे 20% बोनस देने को तैयार हैं और धमकी दी कि जो कामगार भी शीघ्र काम पर वापस नहीं आयेगा, उसे बर्खास्त कर दिया जाएगा। गांधी जी उनके द्वारा करार तोड़े जाने पर बहुत नाराज हुए और उन्होंने कुल उत्पादन की सही लागत, लाभ और जीवन–यापन के खर्च का उपयुक्त अध्ययन करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला था कि वेतन में 35 की वृद्धि करने की कामगारों की मांग न्यायपूर्ण थी। मिल–मालिकों ने साबरमती स्थित उनके आश्रम को खुले दिल से दान दिया था, उनमे से एक अम्बालाल साराभाई जो गांधी जी के परममित्र थे, तथा उनकी बहन अनुसूया बेन अहमदाबाद में मिल कामगारों के संघर्ष में उनके सबसे बड़े समर्थक थे। इस संघर्ष के अंतिम चरण में पहली बार गांधी जी ने विरोध के साधन के रूप में उपवास का इस्तेमाल किया। गांधी जी ने देखा कि कामगार धीरे–धीरे अपना मनोबल खो रहे हैं, इसीलिए उन्होंने उपवास पर जाने का निर्णय लिया। उन्होंने घोषणा की कि यदि भूखों मरने की नौबत आई तो वे ऐसे पहले व्यक्ति होंगे। इसके बाद कारीगरों को 35 प्रतिशत की वृद्धि दिये जाने के समझौते के साथ इस मामले का समाधान हुआ।

तीसरा आंदोलन खेड़ा के किसानों का था, जिनकी फसलों की पैदावार नहीं हो सकी और उन्हें सरकार से जमीनों के लगान की माफी नहीं मिल सकी। सर्वप्रथम इस परिस्थिति की जांच–पड़ताल की गई, जैसा कि गांधी जी के सभी आंदोलनों का सामान्य मानदंड था। उपज की कुल पैदावार का आकलन किया गया और इससे यह पुष्टि हुई कि सामान्य पैदावार से एक तिहाई पैदावार कम हुई है जिसकी वजह से किसान पूरी की पूरी लगान–माफी के हकदार है। गांधी जी ने किसानों को लगान रोकने की सलाह दी। बल्लभ भाई पटेल और इंदुलाल याजनिक ने गांवों में गांधी जी के खेड़ा जिले के दौरों की व्यवस्था करके और किसानों से दृढ़ बने रहने का अनुरोध कर उनकी सहायता की। सरकार किसानों के पशु छीनकर, उनके घरों का सामान जब्त करके, यहां तक कि खड़ी फसलों को छीनकर सख्ती से दमन करना शुरू कर दिया। तभी गांधी जी को पता चला कि सरकार यह निर्देश जारी करके कि केवल उन्हीं लोगों से लगान वसूल किया जाये जो उसे अदा कर सकते हैं, एक समझौता करना चाहती है। गांधी जी ने समृद्ध किसानों से भी भुगतान रोकने का आग्रह किया, ताकि गरीब किसान कहीं घुटने न टेक दें। परन्तु सरकारी निर्देशों की जानकारी मिलने पर गांधी जी ने यह आंदोलन वापस ले लिया।

1916–1917 में हुए चंपारण, अहमदाबाद और खेड़ा आंदोलनों का परिणाम यह हुआ कि गांधी जी अहिंसात्मक सत्याग्रह के अपने तरीके की आजमाइश कर सके। इन आंदोलनों ने परिस्थितियों को परखने में उनकी सहायता की। उन्होंने अपने अनुयायियों के एक ऐसे केन्द्रीय समूह का गठन किया, जो उनकी सहायता कर सके और भावी आंदोलनों में उनके आदेशों का पालन कर सके। इन आंदोलनों में गांधी जी ने स्पष्ट तथा विरोधी हितों, जैसे मिल–मालिकों और कामगारों के बीच, समझौता कराने में अपनी विशिष्ट प्रतिभा दिखाई इनमें से एक से उन्होंने मित्रता निभाई तो उसी के समानान्तर दूसरे वर्ग का भी उन्होंने विश्वास जीता।

गांधी जी के नेतृत्व में दूसरा महत्त्वपूर्ण आंदोलन था रॉलेट सत्याग्रह। फरवरी 1919 में भारतीयों की नागरिक स्वतंत्रता को कठोरता से नियंत्रित करने वाले दो विधेयक पेस किये गए, जिन्हें कानून बनाया जाना था। सरकार ये कानून इसलिए पारित करना चाहती थी, ताकि वह जन–सामान्य के बीच उठने वाले असंतोष की लहर को नियंत्रित करने में समर्थ हो सके। इस कानूनों के बनने से उसे लोगों को बगैर मुकदमा इत्यादि चलाए ही गिरफ्तार करने और सजा देने की निरंकुशता मिल जाती। असल में इनमें से एक विधेयक को चुने गए भारतीय सदस्यों के विरोध के बावजूद कौंसिल में पास करके कानून बना दिया गया था। स्वतंत्रता पर इस प्रकार के प्रतिबंधों को लोग युद्ध के दौरान शायद स्वीकार कर भी लेते। परन्तु युद्ध के समापन ने और अधिक संवैधानिक सुधारों और संपूर्ण स्व–शासन नहीं तो कम से कम अपने निजी मामलों में भारतीयों के अपने अधिकाधिक नियंत्रण की उम्मीद तो जगा ही दी थी।

कौंसिल के सदस्यों और अन्य लोगों के विरोधों की विफलता को देखने के बाद गांधी जी ने 'सत्याग्रह' शुरू कर दिया। एक 'सत्याग्रह सभा' का गठन किया गया, जिसके बहुत से सदस्य बन गए थे। यह निर्णय किया गया कि इस अधिनियम का विरोध करने के लिए एक राष्ट्रव्यापी हड़ताल की जाए और उपवास तथा प्रार्थनाए आयोजित की जाए। कुछ कानूनों के विरोध में सविनय अवज्ञा आंदोलन भी चलाए गए। रॉलेट सत्याग्रह, गांधी जी के मार्गदर्शन में चलाया जाने वाला पहला व्यापक अखिल भारतीय विरोध–प्रदर्शन था। भारत के लोगों ने ब्रिटिश शासन के विरूद्ध बहुत बड़ी संख्या में जुड़कर विरोध प्रदर्शित किया और हड़तालें हिंसात्मक हो गईं। 6 अप्रैल 1919 का दिन हड़ताल के लिए निर्धारित किया गया, परन्तु कुछ भ्रम होने के कारण दिल्ली में यह हड़ताल 30 मार्च को की गई और इससे गलियों में लड़ाइयां भड़क उठीं। जबरन भर्ती और बड़े पैमाने पर फैले रोग तथा अन्य कठिनाइयों के कारण पंजाब ने युद्ध के दौरान अत्यन्त कठोर उत्पीड़न का सामना किया था। अमृतसर और लाहौर इस आंदोलन के केन्द्र थे। गांधी जी ने पंजाब जाकर इस आंदोलन को वापस लेने और इसे 'अहिंसक सत्याग्रह' की राह पर ले जाने का प्रयास किया। परन्तु ब्रिटिश सरकार द्वारा गांधी जी को पंजाब में प्रवेश करने से रोक दिया गया और उन्हें बम्बई भेज दिया गया। बम्बई और अहमदाबाद में भी उस समय अशांति चल रही थी और गांधी जी ने यहां भी आंदोलन को नियंत्रित करने का प्रयास किया।

जब पंजाब में दो स्थानीय नेताओं को गिरफ्तार किया गया तो वहां घटनाए शीर्ष पर आ गई, जिसके परिणामस्वरूप टाउन हॉल और डाक घर पर भी हमला किया गया। राष्ट्रवादी आंदोलन के दौरान विरोध करने का सबसे लोकप्रिय तरीका था, ब्रिटिश सरकार

के प्रतीकों पर हमला करना, अतः टेलीग्राफ की तारें काट दी गई, डाक घरों पर धावा बोला गया और महिलाओं सहित यूरोपियनों पर हमले किये गये। सेना बुला ली गई और बैठकें करने और इकट्ठे होने पर रोक लगा दी गई।

13 अप्रैल 1919 को बैसाखी के दिन अमृतसर को जलियावाला बाग में जनरल डायर का आक्रोश देखना पड़ा, जिसे इस शहर का प्रभारी बनाया गया था। सार्वजनिक सभाओं पर प्रतिबंध लगाए जाने के बावजूद लोगों द्वारा इस नियम का उल्लंघन किए जाने से उसने हमला बोल दिया। निहत्थे, असहाय लोगों पर प्रहार किया और उसके आदमियों ने लगातार 10 मिनट तक गोलियां बरसाईं और गोलीबारी तब बंद की, जब उसका बारुद खत्म हो गया।

गोलीबारी से पूर्व कोई चेतावनी नहीं दी गई थी और वहां से बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं था, सिवाय एक तंग गलियारे के, जहां डायर के आदमी अपनी तोपें लगाकर खड़े थे, क्योंकि जलियावाला बाग चारों तरफ से दीवारों से घिरा था। कंजर्वेटिव सरकार के अनुमान के अनुसार इस घटना में 379 लोगों की मृत्यु हुई। इस हिंसक घटना के बाद और अधिक बर्बरता से दमन की घटनाए घटित हुईं।

पाठगत प्रश्न 21.3

1. 1916–1917 के दौरान गांधी जी ने अपने अहिंसात्मक सत्याग्रह का प्रयोग किस आंदोलन में किया?

   ____

2. रॉलेट सत्याग्रह कब शुरू हुआ?

   ____

3. राष्ट्रीय आंदोलन में 1919 के बैसाखी के दिन का क्या महत्त्व है?

   ____

21.6 अहिंसात्मक असहयोग

जलियावाला बाग जनसंहार के बाद पंजाब में मार्शल लॉ लागू कर दिया गया था। भारतीयों के साथ अमानवीय व्यवहार किया गया, उदाहरण के लिए जिन गलियों में यूरोपीयन महिलाओं पर हमला किया गया था, वहां पर आदमियों को पेट के बल घिसटने के लिए बाध्य किया गया। यद्यपि रॉलेट सत्याग्रह को वापस ले लिया गया था, परन्तु ब्रिटिश शासन के विरुद्ध रोष की भावना में और अधिक कड़वाहट भर गई थी। 1919 के मौंटेग्यू चैम्सफोर्ड सुधारों ने उन लोगों की आशाओं को कुंठित कर दिया था, जिन्हे अब भी औपनिवेशिक सरकार की नीयत पर यह विश्वास था कि वह भारतीयों की सरकार में भागीदारी के द्वारा उन्हें सुधार लाने का अवसर देगी।

इस संक्रमण काल में जागरूक मुस्लिम नेताओं का एक बहुत बड़ा वर्ग आगे आया जिनके पास ब्रिटिश सरकार से असंतुष्ट होने का विशेष कारण था। ये मुसलमान प्रथम विश्व युद्ध

के बाद तुर्की के साथ अमानवीय व्यवहार किए जाने से नाराज थे। पूरे विश्व के मुसलमान तुर्की के खलीफा को अपने आध्यात्मिक गुरू की तरह मानते थे और उन्हें यह आश्वासन दिया गया था कि तुर्की और उसके मित्रों की युद्ध में हार के बाद भी खलीफा के साथ नरमी से व्यवहार किया जायेगा। परन्तु युद्ध के उपरांत तुर्की के साथ समझौते में खलीफा की शक्तियों को बुरी तरह खत्म कर दिया गया था।

जलियांवाला बाग त्रासदी के मामले की जांच के लिए सरकार द्वारा नियुक्त हंटर कमेटी से जब अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की तो ये सभी मामले उभरकर सामने आए। इस रिपोर्ट में उन्होंने जनरल डायर के कारनामों और अन्य सभी प्रकार के दमनकारी कृत्यों का समर्थन किया था। इस रिपोर्ट ने सभी भारतीय नेताओं के आक्रोश को बढ़ा दिया और अगले विरोध आंदोलन के लिए यह अवसर बिल्कुल सटीक प्रतीत हुआ। यही समय था जब गांधी जी ने अहिंसात्मक असहयोग आंदोलन का इरादा किया। असहयोग आंदोलन ब्रिटिश शासन के दमन के विरुद्ध भारतीय जनमानस के सभी वर्गों के आक्रोश की अभिव्यक्ति था। गांधी जी ने तीन मुख्य मुद्दों पर आंदोलन शुरू किया (क) खिलाफत की बुराई (ख) पंजाब के साथ अन्याय, और (ग) स्वराज। असहयोग आंदोलन का आह्वान सर्वप्रथम 22–23 नवम्बर 1919 को दिल्ली में अखिल भारतीय खिलाफत कान्फ्रेंस द्वारा किया गया, जो अली भाइयों (मोहम्मद और शौकत) की अगुवाई में शुरू हुआ। इलाहाबाद में हुई खिलाफत कांफ्रेंस की बैठक में चार चरणों के असहयोग की घोषणा की गई ,यानी–सिविल सेवा की उपधियों का बहिष्कार, पुलिस और सेना का बहिष्कार और अंत में करों का भुगतान न करने का निश्चय। तत्पश्चात गांधी जी ने कांग्रेस के सदस्यों से इस आंदोलन का समर्थन करने का आग्रह करना शुरू किया। सितम्बर 1920 में कलकत्ता के ऐतिहासिक विशेष अधिवेशन में कांग्रेस ने उपाधियों को त्यागने, स्कूलों अदालतों और कौंसिलों का बहिष्कार करने और विदेशी सामान का भी बहिष्कार करने का कार्यक्रम बनाया। इस बहिष्कार के साथ–साथ राष्ट्रीय स्कूल खोलने और सरकार की न्यायिक प्रणाली का सहारा लिए बगैर मामलों को सुलझाने के लिए स्वदेशी अदालतें खोलने तथा खादी को अपनाने का निर्णय किया गया। दिसम्बर 1920 की नागपुर कांग्रेस में वरिष्ठ कांग्रेसी बंगाली नेता चितरंजन दास ने इस आंदोलन को अपना समर्थन दिया। यद्यपि औपचारिक रूप से इस आंदोलन की शुरुआत 1 अगस्त 1920 को हुई कांग्रेसी नेताओं के समर्थन ने इसे नई गति दी और जनवरी 1921 से इसने बहुत शक्तिशाली रूप धारण कर लिया। एक महीने की अवधि में बहुत बड़ी संख्या में विद्यार्थियों ने सरकारी सहायता प्राप्त स्कूलों और कॉलेजों को छोड़ दिया और देश के विभिन्न भागों में शुरू की गई राष्ट्रीय संस्थाओं में प्रवेश ले लिया।

अनेक सुस्थापित वकीलों, जैसे सी.आर.दास, मोती लाल नेहरू, सैफुद्दीन किचलू, वल्लभभाई पटेल, सी. राजगोपालाचारी, और आसफ अली इत्यादि ने अपनी–अपनी आकर्षक प्रैक्टिस बंद कर दी। इस त्याग ने लोगों को बहुत प्रेरित किया। विदेशी सामान का बहिष्कार और विदेशी कपड़ा बेचने वाली दुकानों पर धरना इत्यादि देना विरोध करने के अन्य तरीके थे। चरखों का वितरण शुरू हुआ और हाथ से काते गए सूत से बना कपड़ा राष्ट्रवादियों में लोकप्रिय होने लगा। राष्ट्रवादी समाचारों पत्रों में विज्ञापन देकर लोगों को विदेशी सामान की होली जलांने के कार्यक्रम में भाग लेने के

लिए आमंत्रित किया गया। कपड़े के निर्यात के मूल्यों में एकदम गिरावट आ गई। कपड़े की दुकानों के साथ–साथ इस बार पहली बार शराब की दुकानों पर भी धरना दिया गया।

ब्रिटिश सरकार के सामने यह बात चेतावनी के रूप आई कि जुलाई 1921 में मोहम्मद अली ने ब्रिटिश इंडियन आर्मी में काम कर रहे मुस्लमानों से घोषित रूप से अपील की कि उन्हें सोचना चाहिए कि उनका ब्रिटिश सेना का अंग बनना अनैतिक है और उन्हें वहां काम करना बंद कर देना चाहिए। उन्हें तुरंत गिरफ्तार कर लिया गया। इस आह्वान को कांग्रेस और गांधी ने स्वीकार किया। एक घोषणा–पत्र जारी किया गया, जिसमें सभी लोगों (सिविलियन और सैनिक) को ब्रिटिश सेना से सभी संबंध तोड़ने का आह्वान किया गया। इन सभी हालात के दौरान नवम्बर 1921 में प्रिंस ऑफ वेल्स् भारत आए और बम्बई में जहां वे आए थे और शेष सारे देश में भी, उनका स्वागत हड़ताल से किया गया। गांधी जी ने प्रिंस ऑफ वेल्स् के आगमन के दिन एक बहुत बड़ी बैठक को संबोधित किया ब्रिटिश–विरोधी भावना इतनी प्रबल थी कि जब बैठक स्थल से जाते समय लोगों का उन लोगों से सामना हुआ जो प्रिंस के स्वागत के जुलूस में गए थे तो दंगों जैसी परिस्थिति पैदा हो गई। इस तनाव को कम करने के लिए गांधी जी को चार दिन के उपवास पर जाना पड़ा।

असहयोग आंदोलन धीरे–धीरे शक्तिशाली होता जा रहा था। बंगाल के मिदनापुर जिले में यूनियन बोर्ड के करों के खिलाफ एक आंदोलन आयोजित किया गया और आन्ध्र प्रदेश में भी कोई टैक्स नहीं आंदोलन आयोजित किया गया। गांधी जी की योजना के तहत करों का भुगतान करने से बिलकुल मना करने का सहारा बिल्कुल अंत में करना था और यही इस आंदोलन का सबसे मौलिक चरण था। उत्तर प्रदेश के अवध क्षेत्र में किसान आंदोलन किसान–सभाओं के जरिए जोर पकड़ रहा था जो और अधिक व्यवस्थित रूप लेती जा रही थीं और ब्रिटिश शासन के लिए एक बड़ा खतरा थीं।

औपनिवेशिक सरकार का रूख और अधिक सख्त होता जा रहा था। कपड़े के निर्यात में आई कमी; विद्यार्थियों, वकीलों, सरकारी कर्मचारियों, कामगारों, किसानों, खेतिहार मजदूरों द्वारा दर्शाए गए विरोध और सेना को प्रभावित करने के प्रयासों के परिणामस्वरूप इस आंदोलन के विरुद्ध दमनकारी उपाय अपनाने के तरीकों में वृद्धि हो गई थी। सार्वजनिक बैठकों और सभाओं पर रोक लगा दी गई, समाचार–पत्रों का दमन किया गया, और कांग्रेस और खिलाफत के कार्यालयों पर आधी रात को छापे मारे गए। गांधी जी के मार्ग दर्शन में कांग्रेस बारदोली में सिविल सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरु करने का कार्यक्रम बना रही थी। परन्तु उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले में चौरी चौरा स्थान पर हिंसात्मक घटना होने की वजह से इस आंदोलन को समाप्त कर दिया गया। पुलिस द्वारा विरोध किए जाने पर खिलाफत और कांग्रेस का जुलूस हिंसक हो उठा और उन्होंने पुलिस पर हमला कर दिया। पुलिस के लोगों ने थाने में शरण लेने की कोशिश की, परन्तु भड़की हुई भीड़ ने थाने में आग लगा दी और जो पुलिस वाले आग से बचने के लिए बाहर भागे, उन्हें घसीटकर मौत के घाट उतार दिया गया। पुलिस के बाईस आदमी मारे गए। यह घटना 5 फरवरी को घटी और 12 तारीख को गांधी जी ने असहयोग आंदोलन वापस ले लिया। इस वापसी ने प्रमाणित कर दिया कि इस स्थिति

में गांधी जी किसी भी ऐसे आंदोलन का नेतृत्व नहीं करना चाहते थे जिसे वे नियंत्रित न कर सकें और यह भी प्रमाणित हो गया कि राष्ट्रवादी गांधी जी के इस आह्वान को स्वीकार करेंगे, यद्यपि अनेक लोगों का मत इससे भिन्न था, पर इसके बावजूद किसी ने भी आंदोलन की वापसी के उनके आह्वान के विरोध के बारे में नहीं सोचा।

कांग्रेस पार्टी के भीतर ही उन लोगों की राय में मतभेद था जो शीघ्र होने वाले चुनावों के जरिए विधान परिषद में प्रवेश करना चाहते थे, और वे जो गांधी जी द्वारा बताए गए रचनात्मक कार्यों को गांवों में जाकर अंजाम देना चाहते थे और संघर्ष के अगले चरण की तैयारी कर रहे थे। राजगोपालाचारी, अंसारी और कुछ अन्य व्यक्तियों ने ग्रामीण रचनात्मक कार्य की वकालत की, जबकि मोतीलाल नेहरू, विट्ठलभाई पटेल और हकीम अजमल खान परिषदों में प्रवेश पाना चाहते थे और उनकी प्रणाली में रुकावटें डालकर सरकार के कामकाज को तहस–नहस करना चाहते थे। राजेन्द्र प्रसाद और बल्लभभाई पटेल ने पहेल मत का समर्थन किया, जबकि सी.आर.दास दूसरे मत का ही समर्थन करते रहे। दास और मोतीलाल नेहरू ने चुनाव लड़ने के लिए 1923 में स्वराज पार्टी की स्थापना की। अ–परिवर्तनशील (नो–चेंजर्स) कहे जाने वाले गांधी जी के अनुयायियों के एक समूह को 1924 में गांधी जी के जेल से छूटने पर अधिकाधिक समर्थन मिला तथापि कांग्रेसियों को चुनावों में खड़े होने से नहीं रोका जा सका, यद्यपि उन्होंने रचनात्मक कार्य के महत्त्व को भी स्वीकार किया। कांग्रेसी प्रत्याशियों ने नवम्बर 1924 में हुए चुनावों में केन्द्रीय प्रांतों और बंगाल में कुछ सीटों पर जीत हासिल की। कौंसिलों की प्रक्रिया को तोड़ने के प्रारंभिक प्रयास शुरू हो गए थे, परन्तु जिस भी विनियम को सदस्य, पास नहीं होने देते थे, उसे गवर्नर द्वारा सौंपी गई विशिष्ट शक्तियों से पारित करा लिया जाता था, जिससे दोहरे शासन की सीमाओं का पता चलता था। शीघ्र ही चुने गए सदस्य अपनी दिशा खोने लगे और धीरे–धीरे प्रणाली में समाहित होने शुरू हो गए। बंगाल में सी.आर. दास का अचानक देहांत होने से वहां नेतृत्व की समस्या खड़ी हो गई। राजनीतिक अनिश्चितताओं और 'मुख्यधारा' के कांग्रेसियों की आंदोलन संबंधी गतिविधियों में कुछ मंदी आने की परिस्थिति में राष्ट्रवादी आंदोलन में से क्रांतिकारी आंदोलन के द्वितीय चरण में और अधिक मौलिकतावादी सक्रिय वर्ग का उदय हुआ।

21.7 क्रांतिकारी आंदोलन : पुनर्गठन और पुनःस्थापना

असहयोग आंदोलन की स्वाभाविक लहर ने भारतीय युवा शक्ति के एक ऐसे वर्ग को सामने ला खड़ा किया, जो स्वतंत्रता पाने के लिए दृढ़–संकल्प थे। देश के युवा वर्ग ने गांधी जी के आह्वान का बहुत उत्सुकता से प्रत्युत्तर दिया और उनके असहयोग आंदोलन में भाग लिया। आंदोलन को अचानक वापस लेना उनकी आकांक्षाओं पर एक आघात था। क्रांतिकारी आंदोलन के पहले चरण की गुप्त समितियों को पंजाब और बंगाल में पुनः स्थापित करना शुरू कर दिया गया था।

बंगाल की अनुशीलन समिति का संबंध सुभाष बोस से और युगांतर समिति का जे.एम. सेन गुप्ता समूह से था। इन दोनों समूहों में अत्यधिक राजनीतिक प्रतिद्वंद्विता थी। कुछ छोटे क्रांतिकारी समूह बनने शुरू हो गए थे जैसे चिटगांव के सूर्य सेन के अधीन गठित एक समूह, जो अत्यधिक मौलिक विचारधारा के रूप में विकसित हुआ, उस समय की सबसे उल्लेखनीय क्रांतिकारी गतिविधि थी।

जनवरी 1924 में गोपीनाथ साहा द्वारा डे नामक एक अंग्रेज की हत्या की गई। साहा ने कलकत्ता के पुलिस कमिश्नर टिगर्ब की हत्या की योजना बनाई थी और गलती से उसने डे की हत्या कर दी। इस घटना के परिणामस्वरूप अनेक राष्ट्रवादियों को गिरफ्तार कर लिया गया।

क्रांतिकारी घटनाओं में वृद्धि का एक अन्य केन्द्र था उत्तर भारत जहाँ संयुक्त प्रांत में सचिन सान्याल और जोगेश चटर्जी तथा अन्यों लोगों ने हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन का गठन किया और डकैतियों के जरिए धन इकट्ठा करना शुरू कर दिया। इनमें से सबसे प्रसिद्ध घटना है अगस्त 1925 में हुई काकोर ट्रेन डकैती, जिसके परिणामस्वरूप इस संगठन के अनेक सदस्यों गिरफ्तारी की गई। इस संगठन ने पंजाब के एक अत्यन्त ऊर्जावान और प्रतिभाशाली विद्यार्थी नेता भगत सिंह के नेतृत्व में गठित युवकों के एक समूह से भी संबंध स्थापित किए। पंजाब का यह समूह समाजवादी विचारधारा से अत्यन्त प्रभावित था अतः इस संगठन को हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन (एच एस आर ए) का नया नाम दिया गया। क्रांतिकारियों का उद्देश्य था संपूर्ण स्वतंत्रता, और उनके पास यह संकल्पना भी थी कि स्वतंत्रता मिलने के उपरांत राज्य का स्वरूप कैसा होगा। उन्होंने एक व्यापक जन–संघर्ष शुरू किया और इस प्रयोजन के लिए उन्होंने विद्यार्थियों, कामगारों और किसानों को सक्रिय किया।

21.8 साइमन कमीशन का बहिष्कार

क्रांतिकारी आंदोलन के पुनर्गठन और पुनरुज्जीवन के बीच और मुख्यधारा के आंदोलन के दमन के बाद भारत में और अधिक संवैधानिक सुधारों लाने के लिए साइमन कमीशन के गठन की घोषणा की गई। सभी गोरे लोगों के इस कमीशन में एक भी भारतीय शामिल नहीं था, जिससे स्पष्ट था कि आने वाले सुधार, अगर कोई होंगे, तो भी भारतीय लोगों की अपेक्षाओं को पूरा नहीं कर पायेंगे।

दोहरा शासन पहले ही एक मजाक बनकर रह गया था क्योंकि इसकी वजह से सभी मुख्य निर्णय लेने की शक्ति अभी भी दृढ़ता से औपनिवेशिक सरकार के हाथों में ही थी। सभी गोरों वाले साइमन कमीशन की घोषणा से एक व्यापक असंतोष फैल गया था और इसने राष्ट्रवादी आंदोलन की आग को और भड़का दिया था। भारत में हर मत के राजनीतिज्ञों ने एकमत से कमीशन की निंदा की क्योंकि इसमें भारत के किसी एक भी सदस्य को शामिल नहीं किया गया था।

कमीशन के लिए भारत की प्रतिक्रिया थी, प्रत्येक मत के मानने वाले नेताओं द्वारा एकमत से बहिष्कार का संकल्प लेना। जिस दिन कमीशन के सदस्य भारत में उतरे (3 फरवरी 1928) उस दिन हर मुख्य शहर और कस्बे में एक दिन की हड़ताल की गई। कमीशन के खिलाफ बड़े–बड़े जन–प्रदर्शन और जुलसू निकाले गए। बैनरों, इश्तिहारों और यहाँ तक कि पतंगों पर भी 'साइमन वापस जाओ छपा हुआ था। जहां पर भी कमीशन गया, हर जगह उसे काले झंडे दिखाए गए। कहने की आवश्यकता नहीं कि पुलिस ने बड़ी सख्ती और बर्बरता से दमन किया और जुलूसों पर धावा बोला गया और यहां तक कि अत्यन्त प्रमुख नेताओं को भी नहीं बख्शा गया। सबसे घातक हमला लाला लाजपत राय पर किया गया, जो लाहौर में इस युग के बहुत ही प्रतिभाशाली नेताओं में से एक थे। वृद्ध हो चुके इस नेता को लाठियों से पीटा गया और इस हमले के कुछ दिन बाद ही उनका

देहांत हो गया। लाला लाजपत राय की मृत्यु ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध एक व्यापक विक्षोभ पैदा कर दिया था। इस अवधि के दौरान कांग्रेस के बीच हुआ एक महत्त्वपूर्ण विकास था पूर्ण स्वराज या पूर्ण स्वतंत्रता का लक्ष्य अपनाना। पूर्ण स्वतंत्रता का अभिप्राय था ब्रिटिशों के साथ संबंधों से पूरी तरह छुटकारा।

पूर्ण स्वराज की शपथ लेने के परिणामस्वरूप देश में बहुत सी उम्मीदें जाग उठीं और 26 जनवरी 1930 को पूरे देश में इसी प्रकार की स्वतंत्रता की शपथ ली गई। देश में एक असंतोष पनप रहा था, जिसका प्रमाण था बम्बई–नागपुर क्षेत्र में कम्युनिस्टों द्वारा बुलाई गई रेलवे–हड़ताल, कांग्रेसियों के नेतृत्व में चलाया जा रहा आंदोलन जो सविनय अवज्ञा आंदोलन की तैयारी के लिए था, जिसका चरम रूप था करों का भुगतान न करना। कांग्रेस के विधायकों को अनुदेश जारी किए गए कि वे संघर्ष के अगले दौर की तैयारी के लिए त्याग पत्र दे दें। गांधी जी ने 31 जनवरी को वायसराय इरविन को अंतिम चेतावनी देकर इसकी शुरूआत की, जिसमें पूर्ण स्वतंत्रता या पूर्ण स्वराज का उल्लेख नहीं था। उसमें उल्लिखित ग्यारह सूत्र वास्तव में औपनिवेशिक सरकार से इस राष्ट्र द्वारा की गई विशिष्ट मांगों का एक समूह था। इन मांगों में से एक मांग थी नमक के कर को हटाना और नमक के उत्पादन से सरकार के एकाधिकार को समाप्त करना। इन मांगों में भूमि के राजस्व में पचास प्रतिशत की कमी, कपड़ा–मिलों की सुरक्षा, सेना के खर्चों और सिविल सेवा के वेतनों इत्यादि में पचास प्रतिशत की कमी करना शामिल था।

पाठगत प्रश्न 21.4

1. किन विशिष्ट मुद्दों पर असहयोग आंदोलन की शुरूआत हुई थी?

   ____

2. स्वराज पार्टी की स्थापना कब और किसके द्वारा हुई?

   ____

3. एच.एस.आर.ए. का पूर्ण रूप बताएं।

   ____

21.9. सविनय अवज्ञा आंदोलन

ग्यारह सूत्रीय चेतावनी की कोई प्रतिक्रिया न होने के कारण नमक के मुद्दे पर आधारित सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू किया गया। नमक मूलभूत आवश्यकता की ऐसी वस्तु थी, जिस पर कर लगाने का प्रभाव गरीब से गरीब तबके पर भी पड़ता था, अतः इस प्रकार नमक भारतीय लोगों को वंचित किए जाने और उनके दमन का प्रतीक बन गया। जनसाधारण और राष्ट्रवादी नेता दोनों ने इस मुद्दे को महत्त्व देना शुरू कर दिया। 12 मार्च 1930 को गांधी जी ने अपने साबरमती आश्रम से अपने 72 अनुयायियों को साथ लेकर समुद्र तक डांडी मार्च शुरू किया। डांडी मार्च के पक्ष में लोगों की बहुत बड़ी प्रतिक्रिया हुई। लोगों की बहुत बड़ी भीड़ ने रास्ते में इस मार्च का स्वागत किया और अंत

तक साथ दिया। गांधी जी के प्रति एकता की भावना प्रदर्शित करने के लिए ग्रामीणों ने उन जगहों पर सूत काता जहां–जहां से गाधी जी गुजरे। 6 अप्रैल को गांधी जी समुद्र तट पर पहुंचे और वहां से एक मुट्ठी नमक उठाकर अखिल भारतीय स्तर पर डांडी के नमक का कानून तोड़कर सविनय अवज्ञा आंदोलन की शुरूआत की। संपूर्ण भारत में लोगों ने गैर–कानूनी तौर पर नमक का निर्माण शुरू कर दिया। बड़ी सावधानी के साथ योजनाबद्ध तरीके से और बड़ी संख्या में स्वयंसेवकों का चुनाव करके इस आंदोलन को एक भाग से दूसरे भाग में, मद्रास से महाराष्ट्र तक और बंगाल, असम से कराची तक फैलाया गया। सुदूर उत्तर में पेशावर में बहुत बड़े स्तर पर प्रदर्शन किया गया, जहां खान अब्दुल गफ्फार और उनके अनुयायी खुदाई खिदमतगार या कहें लाल कमीज (रेड शर्ट्स) सक्रिय थे और पिछले कुछ वर्षों से वहां रचनात्मक कार्य कर रहे थे। इसकी बहुत ही अच्छी प्रतिक्रिया देखने में आई थी। कम से कम एक सप्ताह तक परिस्थिति पूरी तरह जनता के हाथ में थी और गढ़वाली रेजिमेंट के सैनिकों ने निहत्थी भीड़ पर गोली चलाने से इंकार कर दिया था। 14 अप्रैल को नेहरू जी की गिरफ्तारी पर मद्रास, कलकत्ता और कराची में सार्वजनिक विरोध प्रदर्शन किए गए। औपनिवेशिक सरकार बहुत अनिश्चय की स्थिति में थी, क्योंकि उसने कभी भी यह आशा नहीं की थी कि नमक सत्याग्रह इस हद तक भड़क जाएगा। अंत में उसने कार्रवाई करने का निर्णय किया और मई में गांधी जी को गिरफ्तार कर लिया गया, जिसका परिणाम यह हुआ कि आंदोलन और अधिक भड़क गया। सविनय अवज्ञा आंदोलन का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू यह था युवकों, खासतौर पर विद्यार्थियों और महिलाओं की भी इसमें भागीदारी थी। महिलाओं ने शराब और विदेशी सामान बेचने वाली दुकानों पर धरने दिए।

सरकार ने लोगों की नागरिक स्वतंत्रताओं को कम करने के लिए अध्यादेश जारी करने और प्रांतों में सिविल अवज्ञा संगठनों पर रोक लगानी शुरू कर दी। जून में कांग्रेस कार्य–समिति पर रोक लगा दी गई और कांग्रेस के अध्यक्ष मोतीलाल नेहरू को गिरफ्तार कर लिया गया। अगस्त आते–आते स्थानीय कांग्रेस समितियों पर भी रोक लगा दी गई थीं। अनेक स्थानीय मुद्दे भी सिविल अवज्ञा आंदोलन का हिस्सा बन गए थे।

सरकारी दमन और आंदोलन के और अधिक गहन होने के बीच साइमन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित की गई, जिसमें ऐसा कोई संकेत नहीं था कि भारत को स्वतंत्र उपनिवेश का दर्जा दिया जा सकता है। इसका परिणाम यह हुआ कि अत्यधिक नरमपंथी भारतीय राजनीतिज्ञ भी ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध हो गए। इस पर वाइसराय ने गोलमेज सम्मेलन का निमंत्रण भेजा और स्वतंत्र उपनिवेश की हैसियत देने के इरादे पर चर्चा करने की बात कही। मोतीलाल और जवाहर लाल नेहरू को इस प्रस्ताव पर चर्चा करने के लिए गांधी जी के पास ले जाया गया। परन्तु कांग्रेस और सरकार किसी भी परिणाम तक नहीं पहुंच सकीं। पहला गोलमेज सम्मेलन नवंबर, 1930 में लंदन में भारतीय नेताओं और ब्रिटिशों के बीच बुलाया गया, परन्तु उसमें कांग्रेस का कोई प्रतिनिधि नहीं था। परंतु यह स्पष्ट था कि ब्रिटिश और भारतीय नेताओं में परस्पर बराबरी के किसी भी वार्तालाप में कांग्रेस की अनुपस्थिति से कोई परिणाम नहीं निकलेगा। अगला सम्मेलन अगले वर्ष बुलाए जाने का निश्चय किया गया। सरकार ने 25 जनवरी, 1931 को गांधी जी को मुक्त कर दिया और कांग्रेस कार्य–समिति के

सभी सदस्यों को भी बिना किसी शर्त के छोड़ दिया। कांग्रेस से आग्रह किया गया कि वह अगले गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए वाइसराय के प्रस्ताव पर विचार–विमर्श करे।

प्रथम गोलमेज सम्मेलन के प्रतिनिधियों के साथ लंबे वार्तालाप और विचार–विमर्श के बाद कांग्रेस ने गांधी जी को वाइसराय से वार्तालाप करने का काम सौंपा। गांधी और इरविन के बीच करीब पंद्रह दिन तक विचार–विमर्श हुआ। अंत में 5 मार्च, 1931 को गांधी इरविन समझौते पर हस्ताक्षर किए गए। इस समझौते की शर्तें निम्नलिखित थीं :

(क) अहिंसात्मक प्रतिरोध में गिरफ्तार किए गए सभी लोगों को तत्काल मुक्त किया जाएगा।

(ख) जो जुर्माने अभी तक वसूल नहीं किए गए थे, उन्हें माफ कर दिया जाएगा।

(ग) अधिग्रहण की गई वह सारी भूमि, जिसे अभी बेचा नहीं गया है, किसानों को लौटा दी जाएंगी।

(घ) जिन सरकारी कर्मचारियों ने त्याग–पत्र दे दिया था, उनके साथ नम्रता का व्यवहार किया जाएगा।

(ङ) तटवर्ती गांवों को अपने उपयोग के लिए नमक बनाने का अधिकार दिया जाएगा।

(च) शांतिपूर्ण और गैर–आक्रामक धरने का अधिकार दिया जाएगा।

कांग्रेस ने अपनी ओर से सविनय अवज्ञा आंदोलन को वापस लेने की सहमति दे दी और अगले गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए भी सहमति प्रदान कर दी। अनेक राष्ट्रवादी नेताओं ने इस समझौते को अस्थायी विराम–संधि ही समझा। परन्तु बहुत से नेता इस समझौते की अनिवार्यता से सहमत नहीं थे। इससे क्रांतिकारी गुप्त समितियों की नई गतिविधियों और अधिकाधिक मौलिकतावादी कम्युनिस्ट आंदोलनों में और तेजी आई। भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरू को इसी समय फांसी दी गई थी, क्योंकि कम्युनिस्ट आंदोलन पूरे देश में फैल चुका था।

मार्च, 1931 में आयोजित कराची अधिवेशन में कांग्रेस ने 'पूर्ण स्वराज' के लक्ष्य को दोहराने के साथ ही दिल्ली में हुए गांधी–इरविन समझौते का भी समर्थन किया। यद्यपि दिल्ली समझौते में स्वतंत्रता का कोई जिक्र नहीं था, फिर भी कराची में कांग्रेस भारत के संविधान की रचना की तैयारी कर रही थी और उसने मौलिक अधिकारों और एक राष्ट्रीय आर्थिक नीति बनाने के संबंध में भी संकल्प लिए। यह संकल्प हमारे संवैधानिक इतिहास का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण पड़ाव था, जहां नागरिक अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, प्रेस की स्वतंत्रता और संघ बनाने की आजादी की रूपरेखा बनाई गई। धार्मिक मामलों में तटस्थता, कानून के समक्ष समानता, सभी वयस्कों को मत देने का समान अधिकार, निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा और अनेक अन्य प्रावधान स्वतंत्र भारत के संवैधानिक प्रावधानों की पूर्व कल्पना थे।

गांधी जी, अगस्त 1931 में द्वितीय गोलमेज सम्मेलन के लिए रवाना हुए। इस दौरान ब्रिटिश सरकार ने ब्रिटेन और भारत दोनों जगह बहुत सख्त कदम उठाये। इरविन के स्थान पर विलिंगटन आ गए और होम गवर्नमेंट के हितकारी व्यवहार में भी परिवर्तन आ

गया। इसके परिणामस्वरूप गांधी जी को गोलमेज सम्मेलन के विचार–विमर्श के दौरान न सिर्फ कुछ हासिल नहीं हुआ, अपितु दिसम्बर 1931 में वापस लौटते पर उन्होंने पाया कि नए वाइसराय उनसे मिलने के भी इच्छुक नहीं हैं। इससे ऐसे लगता था कि शायद औपनिवेशिक सरकार कांग्रेस को अपने बराबर करने पर अफसोस कर रही थी। हैसियत की मानकर उसके साथ समझौता सरकार ने जवाहरलाल नेहरू को गिरफ्तार कर लिया था और उत्तर पश्चिमी सीमांत प्रांत में खुदाई खिदमतगारों के नेता अब्दुल गफ्फार खान को गिरफ्तार करके उनके आंदोलन को बुरी तरह कुचल दिया था।

मानचित्र 21.1 भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की मुख्य घटनाओं के स्थल

इन परिस्थितियों में कांग्रेस ने पुनः सविनय अवज्ञा आंदोलन शुरू करने का निर्णय लिया और उसी दिन गांधी जी ने शांति–वार्ता के लिए वाइसराय से मिलने का अनुरोध किया, परन्तु उसने मिलने से इनकार कर दिया। इसके पश्चात औपनिवेशिक सरकार ने सख्त आक्रामक कदम उठाये, जिनमें से पहला कदम था जनवरी के प्रारंभ में गांधीजी को गिरफ्तार करना और लोगों के नागरिक अधिकारों को बिल्कुल खत्म कर देना। उसके बाद सरकार ने जायदाद जब्त करने और लोगों को नजरबंद रखने का अधिकार प्राप्त कर लिया। इस अधिकार के प्राप्त करने के बाद सरकार ने कांग्रेस के सभी प्रमुख नेताओं को जेल में बंद कर दिया।

लोगों में इसकी बहुत भारी प्रतिक्रिया हुई। व्यापक जन–प्रदर्शन हुए। शराब की दुकानों और विदेशी सामान बेचने वाली दुकानों पर धरने दिये गये, बहुत बड़े पैमाने पर गैर–कानूनी वसूली इत्यादि की घटनाएं हुई और इनका सरकार ने बड़ी सख्ती से दमन किया क्योंकि सरकार राष्ट्रवादियों के साथ किसी प्रकार के समझौते के लिए तैयार नहीं थी। जेल पूरी तरह भर गई थीं, कांग्रेस पर पूरी तरह रोक लगा दी गई थी, गांधी जी के आश्रमों पर पुलिस ने कब्जा कर लिया था, जुलूसों में लोगों को पीटकर भगा दिया जाता था, जो लोग कर का भुगतान करने से मना करते थे उन्हें पीटा और जेल भेज दिया जाता था, और उनकी सम्पत्ति को हड़प लिया जाता था। पूरे देश में अधिकांश नेता जेल में थे और सरकार के क्रूरतापूर्ण व्यवहार और अपमान के बावजूद लोगों ने अपने प्रयासों से दो वर्ष से अधिक समय तक इस सविनय अवज्ञा आंदोलन को जारी रखने का प्रयास किया। इस आंदोलन ने यह प्रमाणित कर दिया कि भारत के आम आदमी का मनोबल कितना मजबूत है और राष्ट्रवादी नेता के रूप में गांधी जी का नेतृत्व कितना सशक्त है। यहां तक कि इस स्थिति में भी नेताओं के अभाव और उनकी राय में अंतर के बावजूद लोगों ने आंदोलन जारी रखने के उनके निर्णय का पालन किया।

21.10 मौलिकतावादी और क्रांतिकारी आंदोलनों में वृद्धि और वामपंथियों का उद्भव

1930 से 1934 के वर्षों के दौरान भी अनेक अभूतपूर्व क्रांतिकारी आतंकवाद के कार्यों की बाढ़ सी आ गई थी, जिनका केन्द्र था बंगाल और पंजाब। सन् 1931 के दौरान कुल 92 घटनाओं की रिपोर्ट मिली, जिनमें से 9 घटनाएं हत्याओं की थीं, उनमें से उल्लेखनीय घटना थी चटगांव के के शस्त्रागार पर धावा। चटगांव में सूर्य सेन के नेतृत्व में क्रांतिकारियों के एक समूह ने स्थानीय शस्त्रागार पर कब्जा कर लिया और इंडियन रिपब्लिकन आर्मी के नाम पर स्वतंत्रता की घोषणा कर दी और गांवों की पहाड़ियों में कई दिनों तक ब्रिटिशों के साथ बहादुरी से युद्ध किया। औपनिवेशिक प्रशासन द्वारा क्रूरता से दमन के बावजूद क्रांतिकारी घटनाओं की संख्या में बढ़ोत्तरी होती गई। पंजाब में एच. एस.आई.ए भी बहुत सक्रिय हो गई थी, जहां पर सिर्फ 1930 के दौरान 26 घटनाएं घटित होने की रिपोर्ट मिली।

स्वतंत्रता–संघर्ष कभी भी गांधीवादी सत्याग्रह के एक ही मार्ग तक सीमित नहीं रहा। इसमें अत्यन्त हिंसक और उग्रवादी क्रांतिकारी आंदोलन और रूसी क्रांति के बाद भारत में आई समाजवादी विचारधारा भी शामिल थी और इसमें सैनिक आंदोलन भी शामिल थे। आंदोलन की ये भिन्न–भिन्न धारायें किसी भी तरह से पृथक नहीं थीं। अधिकांश

क्रांतिकारियों ने गांधी जी के असहयोग आंदोलन में भाग लिया था। असल में चटगांव शस्त्रागार पर कब्जा इसी शोर–शराबे में किया गया था कि 'गांधी राज आ गया है।' चन्द्रशेखर आजाद और भगतसिंह के क्रांतिकारी दलों ने समाजवाद को अपना लिया था, जैसा कि जवाहरलाल नेहरू और सुभाषचंद्र बोस के अधीन कुछ वर्गों ने किया था।

समाजवाद ने व्यवस्थित जन–आंदोलनों के जरिए सामाजिक समानता के बहुत स्पष्ट एजेंडे के साथ आजादी के संघर्ष को जोड़ दिया था, जिससे कामगार वर्ग को गतिशील करने में सहायता मिली। एम.एन रॉय जैसे प्रमुख लोगों ने भारत में कम्युनिस्ट आंदोलन के सिद्धांत की शुरुआत करने की रूपरेखा बनाई, जिसने भारतीय संदर्भ में मार्क्सवाद और लेनिन के विचारों के उचित समायोजन की व्याख्या की। सात भारतीयों ने जिनमें रॉय भी शामिल थे, अक्तूबर 1920 में ताशकंद में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की नींव रखी। धीरे–धीरे अनेक भारतीय बुद्धिजीवियों के बीच और यहां तक कि कांग्रेस के सदस्यों में भी साम्यवाद के सिद्धांत को समर्थन मिलने लगा। सुभाष चन्द्र बोस एक अद्वितीय व्यक्तित्व के धनी थे और अनेक विचाराधाराओं (सिद्धांतों) से प्रभावित थे। सरकारी पदों को छोड़कर असहयोग आंदोलन से लेकर, क्रांतिकारियों के अतिवाद तक, समाजवादी विचारों की भावना को समर्थन देने के साथ–साथ अंत में सैनिक आक्रमण करने के साहसिक कदम का चुनाव करके वे राष्ट्रवादी आंदोलन की भावना का प्रतीक बनकर उभरे। बोस ने इन सभी विभिन्न युद्धनीतियों को लक्ष्य बनाकर यह प्रमाणित कर दिया कि राष्ट्रवादी आंदोलनों के बीच स्वतंत्रता प्राप्ति की विभिन्न संकल्पनाओं के अतिरिक्त और कोई मौलिक नहीं था।

21.11 संवैधानिक सुधार और विधान मंडल में कांग्रेस की भागीदारी

सन् 1935 में भारत सरकार अधिनियम पारित किया गया, जिसमें प्रांतों के विधान मंडलों के चुने गए सदस्यों को अधिक स्वायत्तताः देकर राष्ट्रवादी आंदोलनों को कुछ और रियायतें दी गई। इस अधिनियम द्वारा भारत के और अधिक लोगों को मतदान का अधिकार भी प्रदान किया गया। 1935 का अधिनियम लागू किए जाने के बाद ब्रिटिशों ने 1937 के प्रारंभ में प्रांतीय विधान मंडलों में चुनाव कराने की घोषणा की। कांग्रेस के भीतर दुविधा के समाधान के बाद उसने चुनाव–प्रक्रिया में भाग लिया और इसके बहुत ही अच्छे परिणाम आये। ग्यारह में से पांच प्रांतों में कांग्रेस को स्पष्ट बहुमत प्राप्त हुआ। इस जीत ने स्वतंत्रता–आंदोलन से जुड़े विद्यार्थियों, किसानों और कामगार वर्गों को अत्यन्त प्रोत्साहित किया। उन सभी ने अपनी उपस्थिति दर्ज कराई और सभी वर्गों में यहां तक कि राजसी राज्यों में भी, जो कि औपनिवेशिक राज्यों के पूर्ण नियंत्रण से बाहर थे, आंदोलन शुरू हो गए।

21.12 स्वतंत्रता की ओर

विविध प्रांतों में दो वर्ष तक कांग्रेसी सरकारें रहीं और उन्होंने सामान्य जनमानस के विभिन्न वर्गों के हितों के लिए अनेक कदम उठाये। कांग्रेस सरकारों द्वारा उठाये गए कुछ कदम थे किसानों के लिए किरायों में कमी, राजनीतिक कैदियों की रिहाई और प्रेस पर से प्रतिबंध उठाना। इन सबसे बढ़कर बात यह थी कि इससे यह संकेत मिला कि भारतीय लोग स्वयं पर शासन करने में सक्षम हैं। 1939 के अंत तक सभी कांग्रेसियों ने त्यागपत्र

दे दिये। 1938 में द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू हो चुका था और वाइसराय ने भारत की ओर से यह इकतरफा घोषणा कर दी थी कि भारत ब्रिटिश उपनिवेश होने के नाते युद्ध में ब्रिटेन की ओर से भाग ले रहा है। इस निर्णय के विरोध स्वरूप कांग्रेस हाईकमान ने यह अनुदेश जारी किए कि सभी कांग्रेसी त्याग–पत्र दे दें।

कांग्रेसी मंत्रियों के त्याग–पत्र के साथ ही राष्ट्रीय आंदोलन का एक महत्त्वपूर्ण चरण समाप्त हो गया। असहयोग और सविनय अवज्ञा आंदोलन के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आंदोलन नए क्षेत्रों और वर्गों तक पहुंच गया था। इससे लोगों के दिलो–दिमाग से ब्रिटिश नियंत्रण कम होने लगा था। कांग्रेस द्वारा सरकार को प्रभावशाली ढंग से चलाने से प्रमाणित हो गया था कि आगे चलकर ब्रिटिशों का नियंत्रण और कम हो सकता है।

द्वितीय विश्व युद्ध ने ब्रिटिशों के लिए और नई मुसीबतें पैदा कर दीं। युद्ध के कारण सैनिकों के लिये कपड़े और भोजन जैसी भिन्न उपभोक्ता–वस्तुओं की नई मांग पैदा हो गई थी। इन मांगो को समाज से जबरदस्ती छीना झपटी से ही पूरा किया जा सकता था। इससे ब्रिटिशों के विरुद्ध आक्रोश में और वृद्धि हो गई और उनके समर्थन की बुनियाद और कमज़ोर होने लगी। उदाहरणतया, युद्ध की जरुरतों को पूरा करने के लिये बहुत बड़ी मात्रा में खाद्य पदार्थों को बंगाल से बाहर लेकर जाना पड़ा। इसके परिणामस्वरुप बंगाल में भीषण अकाल पड़ गया और भूख की वजह से लगभग तीस लाख से ज्यादा लोगों की मृत्यु हो गई। इस प्रकार द्वितीय विश्व युद्ध द्वारा पैदा हुई परिस्थितियों ने लोगों के लिये अनेक कठिनाइयाँ पैदा कर दीं। इससे भारत में ब्रिटिश शासन के लिये भी अभूतपूर्व संकट पैदा हो गया।

लगातार ब्रिटिश समर्थन की बुनियाद कमज़ोर होने की परिस्थितियों को देखकर महात्मा गांधी ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध अंतिम आक्रमण करने का निर्णय किया। इस प्रकार अगस्त 1942 में प्रसिद्ध भारत छोड़ो आंदोलन शुरु हुआ। इस आंदोलन में ब्रिटिशों के समक्ष कोई मांगें नहीं रखी गई।उनसे सिर्फ भारत छोड़ने के लिये कहा गया। ब्रिटिशों ने गांधी ज़ी के 'भारत छोड़ो' आंदोलन के प्रत्युत्तर में उन्हें और कांग्रेस कार्य समिति के सभी सदस्यों को बंदी बना लिया। कांग्रेस के नेताओं को बंदी बनाए जाने के समाचार ने लोगों को और अधिक क्रोधित कर दिया और वे सब सड़को पर उतर आए और उन्हें जैसे भी समझ आया, उसी रुप में उन्होंने ब्रिटिश सरकार पर आक्रमण कर दिया। अपने नेताओं की अनुपस्थिति में लोग स्वयं अपने नेता बन बैठे और उन्होंने सरकारी सम्पत्ति पर आक्रमण किया, उसे लूटा और नष्ट किया। सरकार ने इस आंदोलन का क्रूरता से दमन किया और पुलिस की गोलीबारी में अनेक लोग मारे गए।

अंत में बहुत बड़े स्तर पर हत्याओं और गिरफ़्तारियों के बाद सरकार इस आंदोलन का दमन करने में कामयाब हो सकी। सरकारी आंकड़ो के मुताबिक, 1943 के अंत तक गिरफ्तार किये गये लोगों की संख्या 91,000 लोगों से भी ज़्यादा थी। यद्यपिइ स आंदोलन का दमन हो चुका था, परन्तु ब्रिटिश सरकार के समक्ष यह स्पष्ट हो चुका था कि वे बहुत लम्बी अवधि तक भारत पर अपनी पकड़ बनाकर नहीं रख पाएंगे। ब्रिटिशों ने स्वयं ही यह अनुभव किया था कि अब तक उन्होंने उस समर्थन–प्रणाली की सहायता से देश पर शासन किया था, जो 19वीं सदी से भारत में उन्होंने निर्मित की थी। राष्ट्रीय आंदोलनों से जुड़े संघर्षों की शृंखला के माध्यम से यह समर्थन–प्रणाली खत्म हो चुकी थी। भारतीयों के विभिन्न वर्गों

(किसानों, कामगारों, मध्यम–वर्ग, धनी लोग, पुलिस, सेना और अन्य सभी) की सहायता के बगैर ब्रिटिशों के लिये भारत पर शासन करना संभव नहीं था।

एक बार यह अनुभव होने के बाद ब्रिटिशों ने धीरे–धीरे और शांतिपूर्ण ढंग से भारत से वापसी की तैयारियाँ शुरु कर दीं। सन् 1944–45 के बाद उन्होंने सभी कांग्रेसी नेताओं को मुक्त कर दिया और ब्रिटिशों से भारतीयों के हाथों में सत्ता हस्तांतरित करने के लिये कांग्रेस के नेताओं के साथ वार्त्ता शुरु कर दी। और इस प्रकार अगस्त 1947 में भारत स्वतन्त्र हो गया। स्वतन्त्रता–प्राप्ति भारतीयों के लिये बहुत ही खुशी की बात थी। भारतीयों ने शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्यवाद के खिलाफ़ अपनी लड़ाई में विजय प्राप्त की थी। परन्तु यह संपूर्ण विजय नहीं थी। भारत और पाकिस्तान में विभाजन भी साथ में आया। ब्रिटिश सरकार ने हमेशा भारतीय लोगों की एकता तोड़ने का प्रयास किया। वे कभी भी इस बात से सहमत नहीं हुए कि सभी भारतीय लोग सामान्य हितों पर सहमत हैं। और इसीलिये, जब उन्होंने भारत छोड़ा तो इस देश को धर्म के आधार पर विभाजित करने का निर्णय लिया। भारत के विभाजन के साथ–साथ बहुत बड़े स्तर पर साम्प्रदायिक हिंसा भी साथ आई।

वर्ष 1947 भारत के इतिहास का एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण चरण है। यह वर्ष भारतीय लोगों की विजय का वर्ष है क्योंकि इसी वर्ष उन्होंने विदेशी शासन के चंगुल से स्वतन्त्रता प्राप्त की। परन्तु यह वर्ष भारतीय लोगों की एकता के लिये एक बड़ी त्रासदी का वर्ष भी है क्योंकि इस वर्ष देश का दो पृथक राष्ट्र–राज्यों में विभाजन हो गया था।

पाठगत प्रश्न 21.5

1. डांडी मार्च कहाँ से शुरु हुआ था?

   ____

2. 1937 के चुनावों में कितने प्रान्तों में कांग्रेस को स्पष्ट बहुमत मिला?

   ____

3. भारत छोड़ो आंदोलन में कितने लोगों को गिरफ्तार किया गया था?

   ____

आपने क्या सीखा

इस पाठ में निम्नलिखित मुद्दे उल्लेखनीय हैः

भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन किसी एक अकेली घटना का नाम नहीं था, बल्कि यह राजनीतिक घटनाओं की एक संपूर्ण श्रृंखला थी जिसका विस्तार अनेक दशकों तक फैला था।

साम्राज्यवाद का विरोध और राष्ट्रीय एकता दो ऐसे विषय थे जो सभी घटनाओं में सामान्य थे और उन्हें परस्पर जोड़ते थे।

राष्ट्रीय आंदोलन के प्रारंभिक चरण में नरमपंथी नेताओं का वर्चस्व था। इन नेताओं ने औपनिवेशवादी शासको के समक्ष सिलसिलेवार अनेक मांगे रखी। परन्तु इससे भी महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि उन्होंने इस विचार को जन्म दिया कि ब्रिटिश शासन भारतीयों की अर्थव्यवस्था को विकास की ओर निर्दिष्ट नहीं कर रहा है, बल्कि वह भारतीय अर्थव्यवस्था को पतन की ओ ले जा रहा है।

नरमपंथी नेताओं के बाद आए बालगंगाधर तिलक, बिपिन चन्द पाल और लाजपतराय जैसे गरमपंथी नेता, जिन्होंने राष्ट्रीय आंदोलन में जनसामान्य की भागीदारी के विचार को जन्म दिया। गरमपंथी नेताओं ने स्वदेशी आंदोलन का नेतृत्व किया, जो कि ब्रिटिशों के बंगाल–विभाजन के निर्णय के विरुद्ध प्रारंभ किया गया था।

स्वदेशी आंदोलन के अंत ने क्रांतिकारी गतिविधियों को राष्ट्रीय आंदोलन में प्रविष्ट करा दिया। ये क्रांतिकारी नेता, जैसे खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी ब्रिटिश सरकार से हिंसक उपायों द्वारा लड़ना चाहते थे। वे व्यक्तिगत रुप में ब्रिटिश कार्यालयों को भी अपना लक्ष्य बनाना चाहते थे।

राष्ट्रीय आंदोलन में महात्मा गांधी का प्रवेश अगला महत्त्वपूर्ण कदम था। प्रारंभ में महात्मा गांधी ने चम्पारण, खेड़ा और अहमदाबाद में स्थानीय स्तर पर अपने राजनीतिक तरीके आज़माए। शीघ्र ही उन्होंने राष्ट्र व्यापी संघर्ष का नेतृत्व किया।

ब्रिटिश शासन के विरुद्ध गांधी जी का संघर्ष अहिंसात्मक – असहयोग पर आधारित था। इन तरीकों के जरिए उन्होंने तीन मुख्य संघर्षों का नेतृत्व किया – असहयोग आंदोलन (1920–22), सविनय अवज्ञा आंदोलन (1930–34) और भारत छोड़ो आंदोलन (1942)।

इन संघर्षों का परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रीय आंदोलन ने भारतीय जनमानस के बीच अत्यन्त लोकप्रियता प्राप्त कर ली। यह आंदोलन किसानों, कामगारों और विद्यार्थियों के विविध वर्गो तक जा पहुंचा। धीरे–धीरे यह राष्ट्रीय आंदोलन देश के अधिकांश हिस्सों तक फैल गया।

जैसे–जैसे राष्ट्रीय आंदोलन की लोकप्रियता बढ़ती गई, वैसे–वैसे ब्रिटिश सरकार की लोकप्रियता घटती गई। ब्रिटिशों ने अनेक भारतीयों की सहायता से भारत पर शासन किया था। ये भारतीय भारत में ब्रिटिश शासन की समर्थन–प्रणाली का निर्माण करते थे। इस समर्थन–प्रणाली को नष्ट करने और तोड़ने मे राष्ट्रीय आंदोलन सफल रहा।

जैसे ही ब्रिटिशों की समर्थन–प्रणाली टूटने लगी, उन्होंने अनुभव किया कि अब भारत में उनके लिये शासन करना असंभव होगा। इसलिए ब्रिटिशों ने धीरे–धीरे भारतीयों के हाथों में सत्ता हस्तांतरित करने के लिये भारतीय नेताओं से वार्त्ता की प्रक्रिया प्रारंभ करने का निर्णय लिया।

अंत में 1947 में ब्रिटिशों ने भारत छोड़ दिया। 15 अगस्त 1947 से भारतीय विदेशी शासन से स्वतन्त्र हो गये।

लेकिन भारत छोड़ने से पहले ब्रिटिशों ने धर्म के आधार पर भारत का विभाजन करने का निर्णय लिया। भारत की स्वतंत्रता के साथ ही भारत का विभाजन भी हो गया। अतः स्वतंत्रता और विभाजन को आधुनिक भारत के इतिहास में दो अत्यंत महत्त्वपूर्ण घटनाओं के रुप में देखा जाना चाहिए।

पाठांत प्रश्न

1. प्रारंभिक कांग्रेस के सरोकारों के मुद्दो का उल्लेख करें.
2. स्वदेशी और बहिष्कार आंदोलन के विकास की जड़ें खोजें.
3. 1907–1914 के दौरान भारत और विदेशों में क्रांतिकारी आंदोलन की विविध शक्तियों की संक्षेप में चर्चा करें।
4. साइमन कमीशन के बहिष्कार की चर्चा करें।
5. गांधी–इरविन समझौते की क्या शर्तें थी?
6. द्वितीय असहयोग आंदोलन क्यों शरू किया गया था?
7. 1930–1934 के दौरान वामपंथियों के उद्‌भव का उल्लेख करें।
8. 'वर्ष 1947 विजय के साथ–साथ महान त्रासदी का भी वर्ष था' टिप्पणी करें।

पाठगत प्रश्नों के उत्तर

21.1

1. दिसंबर 1885 ए. ओ. ह्यूम
2. 1905 लॉर्ड कर्जन
3. जात्रा
4. कलकत्ता के महत्त्व को कम करने के लिये

21॰2

1. सोहन सिंह भाकना और हर दयाल
2. कनाडा जाने वाले जहाज कामागाटा मारु कें यात्रियों को कनाडा सरकार द्वारा परे धकेल दिया गया था, जब वे 1914 में कलकत्ता पहुँचे तो उन यात्रियों की पुलिस के साथ झड़प हुई जिसमें 22 लोग मारे गये थे।
3. मैडम कामा
4. होम रुल आंदोलन

21.3

1. चम्पारण, अहमदाबाद, खेड़ा
2. 6 अप्रैल 1919
3. इस दिन जलियांवाला बाग में लोगों के एकत्रित होने पर जनरल डायर ने अपने लोगों को निहत्थे और असहाय लोगों पर गोलीबारी करने का आदेश दिया, जिसमें 379 लोग मारे गये थे।

21.4

1. खिलाफत की गलती, पजाब की गलती और स्वराज
2. 1923; मोती लाल नेहरू और सी. आर. दास
3. हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन

12.5

1. सामरमती आश्रम
2. पाँच
3. 91,000 लोगों से अधिक

पाठांत प्रश्नों के संकेत

1. देखें 21.1
2. देखें 21.2
3. देखें 21.3
4. देखें 21.8
5. देखें 21.9 अनुच्छेद 4
6. देखें 21.9 अनुच्छेद 7, 8, और 9
7. देखें 21.10 अनुच्छेद 2 और 3
8. देखें 21.12